तीरंदाज

■ अश्विनी भटनागर

दबी हुई चुप्पी

'आपकी बातचीत कैसी रही?' अमेरिका में लेक ताहो के किनारे पर स्थित कलाकृतियां बेचने वाली दुकान के युवा मालिक ने मुस्करा कर पूछा।

मुझे उसका सवाल अटपटा-सा लगा था, क्योंकि दुकान में आने के बाद से मैंने एक शब्द भी नहीं बोला था। दुकान में लगी हुई कई कलाकृतियों को मैंने जरूर ध्यान से देखा था और फिर एक बड़े से लट्ठे से तराशी गई रेड इंडियन की आकृति को काफी समय तक निहारा था। लकड़ी की बनी लेक ताहो के मूल निवासी रेड इंडियन की जीवंत मूर्ति ने मुझे बेहद आकर्षित किया था। बुत की आखों में ममतामयी करुणा समाई हुई थी।

अपने सवाल से मुझे थोड़ा हतप्रभ देख कर युवा ने मूर्ति की ओर इशारा किया।

'उन साहब से आपके लंबे संवाद के बारे में पूछ रहा था।'

'दिलचस्प थी। अच्छा लगा उनसे मिल कर।' मैंने हंस कर कहा था।

'जरूर लगा होगा। एकतरफा संवाद सबसे प्रभावी संवाद है। कहने वाले को खूब सुख मिलता है उससे। वैसे अगर आप देखें, तो बुत हुए लोगों से संवाद की कशिश ही कुछ और है। मूकता से जीवंत संवाद इसीलिए वक्ताओं को बड़ा लाभकारी लगता है। वे अपने हिसाब से अपनी बात कर लेते हैं और फिर अपने हिसाब से ही जवाब की कल्पना करके अपने बयान से संतुष्ट हो जाते हैं।'

'आप कह तो ठीक रहे हैं। मैंने एक तरह से इस काठ की मूर्ति से संवाद ही किया था। उसकी आखों में झांक कर उसके विलुप्त जीवन को समझने की कोशिश की थी। पर यह मूर्ति आपने अपनी दुकान में क्यों सजा रखी है? इस इलाके से इसका क्या संबंध है?'

युवा दुकानदार (एक ठेठ अमेरिकी श्वेत व्यक्ति) अपना काउंटर छोड़ कर मूर्ति की तरफ बढ़ चला। 'मेरा इस स्थान से कोई सीधा संबंध नहीं है। इसका है। पर यह अपनी कहानी आपको बता नहीं सकता है। इसको जड़ कर दिया गया है।'

'मतलब?' मैंने उत्सुकता से पूछा।

दुकानदार ने आदमकद मूर्ति के कंधे पर दोस्ताना हाथ रखते हुए अपनी बात जारी रखी, 'क्रिस्टोफर कोलंबस ने जब अमेरिका की खोज की थी, तो उसने इनको यानी रेड इंडियंस को यहां रहते हुए पाया था। खोजने तो वह आपका देश निकला था- इंडिया और उसमें रहने वाले ब्राउन इंडियंस- पर पहुंच गया वह यहां और उसको जो मिले उनको देख कर उसने इंडियंस को रेड बता दिया था। ये सारे अमेरिकी महाद्वीप में फैले हुए थे। लेक ताहो में भी खूब थे। प्रेम और शांति के माहौल में उनकी एक अनूठी सभ्यता फल-फूल रही थी। इस झील का नाम दओ था और इसके चारो तरफ वषों नाम का कबीला रहता था। फिर 1848 में यहां की नदी में सोना मिलने की खबर फैल गई

> आधुनिक युग में शायद एक तरफ से कही गई बात को संवाद माना जाने लगा है। कहीं न कहीं दूसरे से हमारी अपेक्षा यह रहती है कि वह जुबान न खोले। सिर्फ सुने, बोले नहीं। बोलना सिर्फ अपराध नहीं, बल्कि सामाजिक पाप माना जाने लगा है।

थी, दस साल बाद चांदी की खदान का भी पता चल गया था। फिर क्या था, गोरों की भीड़ यहां उमड़ पड़ी। रेड इंडियंस के लिए चमकीली धातुओं का कोई विशेष उपयोग नहीं था, पर हमारे लिए उसकी कीमत बहुत थी। पहले वे समझ नहीं पाए थे कि अचानक इतने बाहर के लोग क्यों उनके देश में घुसे चले आ रहे हैं। पर जब उन्हें समझ में आया तब तक बहुत देर हो चुकी थी।'

उसने एक लंबी सांस भरी और कहा, 'उनको मालूम नहीं था कि लालच संवाद नहीं करता है, अपनी पूर्ति के लिए सिर्फ संहार करता है। गोरों का लालच इनको लील गया। एकतरफा संवाद की परिणति आज आप इस काठ के पुतले में देख रहे हैं। इंडियंस नहीं रहे हैं, अब बस उनकी प्रतिमाएं बना कर हम संतुष्ट हो रहे हैं।'

उसकी बात सुन कर मैं कुछ सोच में पड़ गया। कुछ मिनट पहले जिसे मैं मात्र एक वस्तु विशेष के रूप में देख रहा था, वह फौरन एक रूह, शरीर और जुबान में तब्दील हो गया था। मैं उसकी आपबीती को उसकी गरम सांसों के जरिए महसूस करने लगा था। पुतला जी उठा था। कुछ देर पहले जो मैंने एकतरफा संवाद किया था, अपने तरीके से उसकी आखों से झलकती करुणा को समझ कर मूर्तिकार की कलात्मकता से अपने को संबद्ध किया था, वह सब यकायक बेमानी हो गया था।

मन ही मन अपनी बात कह कर मैं आश्वस्त था कि मैंने मूर्ति और अपने बीच एक रिश्ता कयाम कर लिया था, जबकि वास्तविक स्थिति यह थी कि सत्यता की बुनियाद के बिना कोई रिश्ता संभव ही नहीं था। अगर वह दुकानदार नहीं टोकता, तो मैं अपनी खामखयाली में मस्त रहता। मूक से संवाद कर अपने अनुभव को पूरी मुखरता से किसी और मूक से बयान करता और यह चक्र चलता रहता।

आधुनिक युग में शायद एक तरफ से कही गई बात को संवाद माना जाने लगा है। कहीं न कहीं दूसरे से हमारी अपेक्षा यह रहती है कि वह जुबान न खोले। सिर्फ सुने, बोले नहीं। बोलना सिर्फ अपराध नहीं, बल्कि सामाजिक पाप माना जाने लगा है। हम अपने को विवेकशील और तर्कशील मनुष्य मानते हैं, पर अपने सामने वाले से मशीनी रोबोट होने की उम्मीद रखते हैं। हमें विश्वास हो चला है कि हम बिना कहे भी सब सुन चुके हैं और हमारा अनुभव बाकी सबके अनुभव से ज्यादा व्यापक, उचित और प्रासंगिक है।

वास्तव में बिना रेड इंडियन की कहानी सुने और बिना उनके अनुभव को जाने मैंने उस मूर्ति के संदर्भ के बारे में अपना मन बना लिया था। अपने पूर्वानुमानों के बूते पर एक समाज की प्रासंगिकता तय कर दी थी। उस पर अपने को थोप दिया था। न मैंने उस संस्कृति का मर्म समझा था और न ही उनके जीवन की विसंगतियों का आकलन किया था। बस एक सतही नजर डाल कर अपने हिसाब से निष्कर्ष निकाल लिया था। उसकी बेजुबानी मुझको सूट करती थी। मैं अपनी संवेदनशीलता से प्रसन्न था।

वैसे मूक से मुखर तक का सफर, जिसमें एकतरफा नहीं बल्कि दोतरफा संभाषण हो, हमारी कामना की वास्तविकता होनी चाहिए। रेड इंडियन लगभग विलुप्त हो गए हैं। यूरोप से आए हुए लोगों ने बंदूक और तोप के गोलों से उनका मुंह हमेशा के लिए बंद कर दिया था, जिसकी वजह से उन्होंने अपनी संस्कृति के साथ-साथ अस्तित्व भी गंवा दिया था। उनको उनकी मुखरता बचा सकती थी, पर बोल के बोलबाले की आवश्यकता से वे अनभिज्ञ थे। वे खत्म हो गए। उनकी कहानी सुनाने वाला भी अब कोई नहीं बचा है। चुप्पी उनकी मौत बन गई थी।

एक विश्व एक परिवार

स्वामी अग्निवेश

आज विश्व हिंसा की चपेट में है। धर्म, संप्रदाय, नस्ल और जाति के झगड़े में दिन-प्रतिदन मरने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है। विश्व के अधिकांश देशों में राजनीति को धार्मिक कट्टरता और कॉरपोरेट की काली छाया ने ढंक लिया है। धार्मिक कट्टरपंथियों का मकसद लोगों को अंधविश्वास और पाखंड के मकड़जाल में फंसा कर अपना उल्लू सीधा करना है, तो विकास के नाम पर कॉरपोरेट का मकसद ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाना है।

आज समूचे विश्व में सत्ता और कॉर्पोरेट की मिलीभगत से प्राकृतिक संसाधनों की लूट मची है। जंगलों में रहने वाले आदिवासी समूहों को बेदखल किया जा रहा है। अफ्रीकी देशों और दक्षिण एशिया के अधिकांश देशों के साथ ही विकसित अमेरिकी और यूरोपीय देशों के मूल निवासियों के साथ बर्बरता का व्यवहार किया जा रहा है। उन्हें विकास की सबसे अधिक कीमत चुकानी पड़ रही है। प्रकृति के अंधाधुंध दोहन से पर्यावरण को भारी नुकसान हो रहा है। इस समय विश्व पर्यावरण भारी संकट में है, तो सदियों से प्रकृति के सहारे अपना जीवन यापन कर रहा आदिवासी समाज दर दर की ठोकरें खा रहा है।

एक और बात पूरे विश्व में आम है। यह है अपने पड़ोसियों के साथ वैर भाव। देशों में पड़ोसी मुल्कों के साथ परस्पर सहयोग और शांति की भावना न होकर शत्रुतापूर्ण व्यवहार देखने को मिल रहा है। इसके कारण आज विश्व के अधिकांश देशों में छद्म राष्ट्रवाद का जोर है, जो शासकों को बुनियादी मुद्दों को छोड़ कर हथियारों की खरीद की तरफ ले जा रहा है। जबकि यह सच्चाई है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद 'नेशन स्टेट' यानी 'राष्ट्र-राज्य' का कोई मतलब नहीं रह गया है। सब बाजार की शक्तियां तय कर रही हैं। आज बहुराष्ट्रीय कंपनियां इतनी शक्तिशाली हो गई हैं कि वे यह तय करती हैं कि अमुक देश का राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री कौन होगा। इसके बाद भी उस देश को गुमान रहता है कि हम राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री चुन रहे हैं।

ऐसी सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक परिस्थिति में विश्व भर में निराशा के गहरे बादल मंडरा रहे हैं। आम जनता बेबस है, तो युवा निराश हैं। बेरोजगारी से जूझ रहे युवा हिंसक और अतिवादी संगठनों के लिए आसान चारा बन गए हैं। ये संगठन उन्हें उकसा या उनका भावनात्मक दोहन कर उनके जरिए अपना मकसद साध रहे हैं। इसके अलावा विश्व भर में स्थापित सत्ता प्रतिष्ठानों के खिलाफ आक्रोश बढ़ रहा है। उसमें भी युवाओं की सहभागिता सबसे ज्यादा है। इस परिस्थिति से दुनिया भर के लोग बाहर निकलना चाह रहे हैं, लेकिन किसी साफ और स्पष्ट नीति के अभाव में पूरा विश्व समुदाय खुद को असहाय पा रहा है।

संयुक्त राष्ट्र प्रति वर्ष इक्कीस सितंबर को विश्व शांति दिवस मनाता है। इस वर्ष संयुक्त राष्ट्र ने जलवायु संकट से जूझ रहे विश्व के लिए दुनिया के राष्ट्राध्यक्षों को चुनौती स्वीकार करने का आह्वान किया। लेकिन यह सिर्फ आह्वान से संभव नहीं है। जब तक संयुक्त राष्ट्र एक सौ तिरानबे देशों का, राष्ट्र-राज्यों का क्लब बना रहेगा, तब तक इन समस्याओं का कोई समुचित समाधान नहीं हो सकेगा और न ही युद्ध की विभीषिका से और युद्ध सामग्री पर होने वाले प्रति वर्ष दो हजार अरब डॉलर के अत्यंत नुकसानदायक खर्चे से निजात मिलेगी। इसके लिए सारे राष्ट्र-राज्यों को मिल कर पृथ्वी पर मानवता के एक आदर्श सपने को साकार करने की जरूरत है। क्योंकि इस तरह विकास की अंधी दौड़ में प्रकृति के अतर्कित दोहन और शक्तिशाली बनने की होड़ में हथियारों का जखीरा जमा करते जाने से पूरी मानवता ही खतरे में है।

मैंने कोलकाता के सेंट जेवियर कॉलेज में प्रोफेसर की प्रतिष्ठित नौकरी छोड़ कर संन्यास लिया। स्वामी दयानंद सरस्वती के आदर्शों और विचारों ने मुझे एक जीवन-दृष्टि दी। जिसके कारण संन्यासी जीवन स्वीकार करने के बाद मैं किसी मठ और मंदिर में रह कर विलासिता का जीवन जीने के बजाय गरीबों की सेवा में अपना जीवन लगा दिया। आजीवन धार्मिक कट्टरता, पाखंड, अंधविश्वास, सामाजिक ऊंच-नीच और गैर-बराबरी के लिए संघर्ष करता रहा। अपने लंबे सामाजिक-अध्यात्मिक जीवन में मैंने देश-विदेश भर में भ्रमण किया। यात्रा के दौरान विभिन्न धर्मों, संप्रदायों और नस्लों के लोगों के जीवन और अनुभव से सीखने के बाद यह कह सकता हूं कि लंबे समय से संसार में सांप्रदायिकता और नस्लवाद साम्राज्यवादी शक्तियों के हाथ का सबसे मजबूत हथियार रहा है। साम्राज्यवादी ताकतों ने सांप्रदायिकता को बढ़ावा दिया। भारत की आजादी की लड़ाई में गांधीजी ने सर्व धर्म समभाव की वकालत की थी।

आज संपूर्ण धरती पर धर्म, संप्रदाय, जातिवाद को लेकर बढ़ती राजनीति और अमीर-गरीब के बीच चौड़ी होती खाईं को देखा और महसूस किया जा सकता है। राजनीतिक और धार्मिक लोगों के पास इस समस्या का कोई समाधान नहीं है। ऐसे में वेद के आदर्श वसुधैव कुटुंबकम् की भावना से घृणा और हिंसा की अमानवीय राजनीति को समाप्त किया जा सकता है। अंधविश्वास और पाखंड की इस परिस्थिति में वैदिक आदर्शों को लेकर एक नया समाज बनाने के लिए और शिक्षा में जागतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करने के लिए एक आध्यात्मिक क्रांति का प्रयास किया जा सकता है। वसुधैव कुटुंबकम् का सनातन वाक्य एक न्यायसंगत और शांतिपूर्ण विश्व व्यवस्था के निर्माण और सार्वभौमिक मानव एकता का आध्यात्मिक आंदोलन बन सकता है।

संदर्भ

> सही सोच-विचार रखने वालों का स्पष्ट मत है कि पृथ्वी पर तब तक शांति और न्यायपूर्ण व्यवस्था स्थापित नहीं हो सकती जब तक कि लोगों के बीच धर्म आधारित असमानता और लोगों के बीच आपसी अविश्वास को दूर नहीं किया जाता है।

एक ईश्वर, एक ब्रह्मांड और एक विश्व परिवार- वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना और न्याय के साथ शांति हर मनुष्य की जिम्मेदारी है। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय और ईशोपनिषद में कहा गया है कि 'ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्/ तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।' जिसका अर्थ है कि 'ईश्वर प्रदत्त इन संसाधनों का अपनी आवश्यकतानुसार और त्यागपूर्वक उपभोग करो, न कि अपने लालच और उपभोक्तावाद के वशीभूत होकर।'

सही सोच-विचार रखने वालों का स्पष्ट मत है कि पृथ्वी पर तब तक शांति और न्यायपूर्ण व्यवस्था स्थापित नहीं हो सकती जब तक कि लोगों के बीच धर्म आधारित असमानता और लोगों के बीच आपसी अविश्वास को दूर नहीं किया जाता है। आध्यात्मिक आंदोलन के रूप में वसुधैव कुटुम्बकम्, इस तरह के परिवर्तन का उद्घोष करता है। यह अवधारणा भले ही वेदों से ली गई है, लेकिन यह हर तरह उप-पहचानों और बाधाओं के बिना एक दुनिया की कल्पना करता है; जिसमें सभी धर्म, संप्रदाय, जाति और क्षेत्र के लोग एक परिवार की तरह रह सकें।

हर इंसान इस विचार-दृष्टि को आसानी से ग्रहण कर सकता है, क्योंकि यह सभी धर्मों के आध्यात्मिक मूल में मौजूद है। यह वह प्रकाश है जो सांप्रदायिकता, धार्मिक कट्टरवाद और राजनीतिक उद्देश्यों के लिए धर्म के दुरुपयोग से बाहर है। सभी धर्म अलग-अलग तरीकों से एक सृष्टिकर्ता ईश्वर में विश्वास करते हैं। लेकिन वे जोर देकर कहते हैं कि उनका भगवान ही एकमात्र सच्चा भगवान है। ऐसा करने के लिए वे परमेश्वर के विचार को विकृत करते हैं। विडंबना यह है कि ऐसा भगवान मनुष्यों के बीच भेदभाव, घृणा, अन्याय और हिंसा का स्रोत बनता है। इस तरह की धार्मिक कट्टरता ईश्वर के विचार का मजाक उड़ाती है।

इस प्रकार एक ईश्वर का विचार मानवीय एकता की बुनियाद है। वसुधैव कुटुम्बकम् का विचार हमें धार्मिक कट्टरता से दूर तटस्थ दृष्टि और आध्यात्मिक विचार प्रदान करता है, जिसमें स्वामी दयानंद सरस्वती की सांप्रदायिक सद्भाव की विरासत, कार्ल मार्क्स का चिंतन, महात्मा गांधी का सत्याग्रह और आंबेडकर का संघर्ष समाहित है। इस विचार को लोगों में रोप कर ही विश्व शांति की दिशा में आगे बढ़ा जा सकता है।

लोकतंत्र बनाम भीड़तंत्र

कभी वे दिन थे जब मेरे जैसे लोग राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को गंभीरता से नहीं लिया करते थे। उनकी शाखाओं में मैं भी जाती थी दिल्ली के झंडेवाला इलाके के एक मैदान में, तो सिर्फ समझने के लिए कि इस संस्था में कौन-सी चीज है, जो अच्छे-खासे समझदार लोग इसमें शामिल हो जाते हैं बचपन में और फिर इससे जुड़े रहते हैं उमर भर। इस खोज में मेरी अच्छी दोस्ती एक सरसंघचालक से भी हुई थी, जिनको रज्जू भैया कहते थे। शाखा देखने के बाद मैं उनके साथ उनके कमरे के बाहर एक बरामदे में बैठ कर चाय पर चर्चा करती थी। देशभक्ति की बातें हुआ करती थीं, लेकिन राजनीति की बहुत कम।

जबसे संघ के एक प्रचारक भारत के प्रधानमंत्री बन गए हैं, मैंने देखा है कि इस तथाकथित सांस्कृतिक संस्था ने अपना भेस बदल कर राजनीतिक बना लिया है। यह भी देखने को मिला है कि देश के महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर बात करने लगे हैं संघ के सरसंघचालक। पिछले साल उन्होंने दिल्ली के विज्ञान भवन में एक विशाल पत्रकार सम्मेलन बुलाया था, जिसमें शामिल होने गए थे दिल्ली के जाने-माने पत्रकार और टीवी एंकर। याद है मुझे कि उस सम्मेलन में मोहन भागवत ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि गुरु गोलवलकर ने जो कभी सुझाव दिया था कि भारत की मुसलिम समस्या को खत्म करने के लिए हमको वही करना चाहिए जो हिटलर ने यहूदियों के साथ किया था, उसको अब आरएसएस नहीं मानता है। दौर के साथ सोच भी बदल गई है। लेकिन पिछले हफ्ते भागवत का दशहरा वाला भाषण सुन कर मेरे दिल में वही पुराने सवाल उठने लगे।

इन सवालों में सबसे अहम सवाल यही है कि क्या अरएसएस के हिंदू राष्ट्र में मुसलमानों के लिए बराबर का दर्जा मिलेगा या क्या उनको आदत डालनी होगी दूसरे दर्जे के नागरिक होने की? यह सवाल तब उठा जब भागवत ने स्पष्ट किया कि किसी भी भारतीय भाषा में लिंचिंग शब्द है ही नहीं, सो जो लोग भारत को लिंचिंग्स के लिए बदनाम कर रहे हैं उनका मकसद ही गलत है। इशारा किया सरसंघचालक ने कि ये इल्जाम लग रहे हैं पश्चिमी देशों की एक सोची-समझी साजिश के तहत।

ऐसा बिल्कुल नहीं है भागवतजी। कोई साजिश नहीं है। बदनाम भारतीय जरूर हुआ है, इन भीड़ हिंसाओं के कारण और वह इसलिए कि किसी सभ्य देश में जब किसी निहत्थे आदमी को सरेआम पीट-पीट कर मारा जाता है और उसके गर्व से विडियो बनाते हैं लोग, तो एक देश अपने आप को सभ्य कहने का अधिकार खो देता है।

वक़्त की नब्ज़

■ तवलीन सिंह

> नुकसान हुआ है अगर तो भारत की लोकतांत्रिक छवि को, क्योंकि लोकतंत्र का आधार है कानून-व्यवस्था। जिन देशों में लोग आदत डाल लेते हैं कानून को अपने हाथों में लेने की, उन देशों में लोकतंत्र धीरे-धीरे कमजोर हो जाता है।

मैंने कुछ ऐसी बातें ट्वीट करके कही भागवत के भाषण के बाद, तो मेरे पीछे पड़ गए मोदी के सोशल मीडिया समर्थक। गालियां खूब सुनाई और बार-बार पूछा मुझसे कि मेरा दिल सिर्फ मुसलमानों के लिए क्यों दुखता है। आंकड़े पेश किए गए, साबित करने के लिए कि इस साल मुसलमानों से कितने ज्यादा हिंदू मारे गए हैं भीड़ों द्वारा।

ऐसा हुआ भी होगा, लेकिन क्या ऐसा कोई हादसा हुआ है, जिसमें किसी हिंदू युवक को खंभे से घंटों बांध कर उससे अल्लाह-ओ-अकबर कहलाया गया हो? और वह भी डंडों और लाठियों से पीट-पीट कर? ऐसा झारखंड में हुआ था, तबरेज अंसारी के साथ। उससे जय श्रीराम कहलाया गया और उसने बार-बार कहा, लेकिन भीड़ का अत्याचार बंद नहीं हुआ। जोर-जोर से पड़ती रहीं उस गरीब पर लाठियां और सरिए। फिर पुलिसकर्मी को बुला कर उसे गिरफ्तार करवाया गया। चार दिन बाद अंदरूनी जख्मों के कारण हिरासत में उसकी मौत हो गई।

लिंचिंग इसको कहते हैं। कुछ दिनों पहले जब दो दलित बच्चों को मार डाला गया था, इसलिए कि वे खुले में शौच कर रहे थे, उसको लिंचिंग नहीं कह सकते। वह निर्मम हत्या थी। दंगों को लिंचिंग नहीं कह सकते हैं और न ही उसको लिंचिंग कह सकते हैं, जब किसी संघ कार्यकर्ता के घर पर मुसलमान हमला करके जान से मार डालते हैं पूरे परिवार को। वह भी हत्या होती है सिर्फ।

लिंचिंग उसी हिंसा का नाम है, जो की जाती है सरेआम लोगों में भय पैदा करने के लिए। ऐसा करते आए हैं गोरक्षक गायों की तस्करी रोकने के बहाने। लेकिन संदेश यह गया है मुसलमानों को कि पशुपालन करना अब मुश्किल है। और वृद्ध गायों को मारना भी। नतीजा यह कि पुष्कर के पशु मेले में बिक्री सत्तानबे फीसद कम रही। नतीजा यह भी देखने को मिल रहा है कि वृद्ध गायों को इतनी बड़ी तादाद में खुला छोड़ा जा रहा है कि फसलें खाने लगी हैं।

ऐसा होना शुरू है जब से सितंबर, 2015 में दादरी के बिसाहड़ा गांव में मोहम्मद अखलाक और उसके बेटे को उनके घर के अंदर से घसीट कर मारा गया था इस शक पर कि उन्होंने अपने घर की फ्रिज में बीफ रखी हुई थी। अखलाक वहीं मर गया, उसका बेटा दानिश जिंदा है, अस्पताल में इलाज करवाने के बाद।

इसके बाद शुरू हुआ वह लिंचिंग का दौर, जो अब तक चला आ रहा है। आम आदमियों को जब इजाजत मिल जाती है कानून को अपने हाथ में लेने की, तो इस तरह की हिंसा बढ़ती रहती है। सो, कई हादसे हुए हैं, जिनमें भीड़ ने बच्चा चोरी के शक पर लोगों को मार डाला है।

नुकसान हुआ है अगर तो भारत की लोकतांत्रिक छवि को, क्योंकि लोकतंत्र का आधार है कानून-व्यवस्था। जिन देशों में लोग आदत डाल लेते हैं कानून को अपने हाथों में लेने की, उन देशों में लोकतंत्र धीरे-धीरे कमजोर हो जाता है। इसलिए भागवतजी, बहुत जरूरी है कि आप लिंचिंग का असली मतलब समझ जाएं ताकि आप अपने कार्यकर्ताओं को लगा दें इस शर्मनाक, कायर हिंसा को रोकने में।

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति

आए दिन हजारों लोग चैनलों में रोते-बिलखते दिखते रहे। वे रोज पीएमसी बैंक के आगे खड़े होकर नारे लगाते रहे। सरकार के हजूर में गुहार लगाते रहे कि हमारा पैसा और हमें क्यों नहीं मिल रहा?

इसे देख हुजूर का दिल पिघला और कह दिया कि छह महीने में एक हजार रुपए बैंक से निकाल सकते हैं। लोग बोले कि हुजूर! एक हजार में आप ही छह महीने अपने परिवार का पेट पाल कर दिखा दें, तो हुजूर ने तरस खाकर छह महीने में पच्चीस हजार रुपए निकालने को कह दिया!

लेकिन लोगों का रोना-धोना कम न हुआ। एक भक्त चैनल ने इस बैंक घोटाले पर पहली बार बहस कराई, जिसमें भक्त-प्रवक्ता ने दुखी प्राणियों से कुछ इस भाव से कहा मानो अहसान कर रहे हो कि 'पच्चीस हजार रुपए तक' कर तो दिया! इस पर एक भुक्तभोगी रोषपूर्ण स्वर में बोली कि हम क्या भीख मांग रहे हैं आपसे? हमारा पैसा है। हमें वो चाहिए! गनीतम रही कि उन्होंने उसे देशद्रोही न कहा!

शुरू में सिर्फ एक चैनल ने पीड़ितों की खबर दी। उसी में कई दलों के बड़े नेताओं के नाम भी आए, जिनकी कृपा से यह बैंक डूबा। लेकिन उसके बाद किसी चैनल पर किसी का नाम न आया। सिर्फ तीन घोटालेबाजों के चेहरे और नाम दिखते रहे। अपने यहां अक्सर ऐसा होता है कि पहले सत्य पर दूसरे, तीसरे सत्य का लेप चढ़ाया जाता रहता है और इस तरह पहला सत्य 'आउट' कर दिया जाता है।

जब लोग 'प्रोटेस्ट' करने लगे और महाराष्ट्र विधानसभा के चुनावों के बीच मार्मिक खबर बनाते रहे, तो कुछ आंसू पोंछने का प्रयास हुआ।

वित्तमंत्री जी आईं। पीड़ितों से बात की। फिर मीडिया से मुखातिब हुईं, जिसमें उन्होंने बैंकों की दोहरी-तिहरी व्यवस्था के बारे में पत्रकारों का ज्ञानवर्धन अधिक किया और 'नियमों में परिवर्तन किया जाएगा ताकि ऐसा फिर न हो' का आश्वासन दिया!

इस बीच नाराज लोगों को कैमरे दिखाते रहे : एक बोला कि मैंने किडनी बदलवाई है, मुझे पांच हजार की दवाई रोज चाहिए। बताइए, मैं कैसे जिंदा रहूं? दूसरा अचानक बेहोश-सा होने लगा, तो उसको लोग पानी पिलाते दिखे। एक रोते-रोते कहता रहा कि सर कुछ तो करिए। ऐसे कैसे जिएंगे।

बहरहाल, हम तो सोचते रहे कि दशहरे के दिन रावण-दहन ही बड़ी खबर बनेगा और एंकर जन 'बुराई पर अच्छाई की जीत' का जाप करेंगे, लेकिन असली बड़ी खबर रफाल ने बनाई और उससे भी बड़ी खबर राजनाथ सिंह द्वारा रफाल की जन्मभूमि पर 'शस्त्र पूजा' करने ने बनाई।

कांग्रेस को यह पूजा फूटी आंख न सुहाई। यही नहीं, कांग्रेस ने सेक्युलर सवाल दागे और भाजपा के हाथों जम कर ठुंकी!

विधानसभा के चुनाव नजदीक हैं। एक रिपोर्टर हरियाणा के

बाखबर

■ सुधीश पचौरी

> एक दिन संघ प्रमुख मोहन भागवत ने 'लिंचिग' शब्द के 'भारतीय' न होने पर आपत्ति जता कर चैनलों में विवाद पैदा कर दिया। जवाब में एक ने कहा कि 'लिंचिंग' अंग्रेजी का हो या किसी का, 'हिंसा' तो 'हिंसा' है।

एक शहर में स्वयं को बेरोजगार बताने वाले एक युवक से पूछती दिखी कि किसे वोट देंगे, तो वह कहने लगा कि ठीक है कि रोजगार चाहिए, लेकिन सुरक्षा भी तो चाहिए और वह प्रधानमंत्री ने दी है!

अब भी पूछते हो कि वोट किसे?

फिर वह एक अन्य शहर के एक किसान जैसे व्यक्ति से यही सवाल पूछती दिखी, तो भी ऐसा ही जवाब आया कि ठीक है कि परेशानी है, लेकिन वोट भाजपा को ही देंगे!

फिर भी पूछते हो कि वोट किसे?

एक अंग्रेजी चैनल आर्थिक ठंडी पर एक लंबी विद्वतचर्चा करा और बता चुका है कि कोई रास्ता नहीं दिखता! लेकिन वोट की पूछो तो इस सबका कोई असर नहीं दिखता!

क्या यह प्रकारांतर से किसी पक्ष का प्रचार नहीं?

राष्ट्रवाद के नए नेरेटिव पर जनता का मूड भांपने के लिए आयोजित एक अंग्रेजी चैनल-चर्चा के दौरान पहले एक चर्चक ने कहा कि बेरोजगारी है, मंदी है, सब कुछ है लेकिन 'राष्ट्रवाद' का विचार जनता के बीच बैठा हुआ है, वही वोट को तय करता है। जवाब में एक कांग्रेसी टाइप व्यक्ति कहता रहा कि ऐसा नहीं हो सकता।... तब लेखक चेतन भगत ने अपनी एक सूत्रीय शैली में इस शंका का समाधान किया कि अपने लोग सोचते हैं कि वे आधी रोटी खा लेंगे, लेकिन इमरान को ठिकाने लगाएंगे!

ऐसे ही एक शाम एक चैनल 'सिद्धांतिकिया' सवाल पूछने लगा कि क्या संघ गांधी को 'एप्रोप्रिएट' कर सकता है? आम भाषा में कहें तो क्या संघ गांधी को 'पचा' सकता है?

एक अन्य चैनल पर देर तक कुछ चर्चक गांधी के आदर्शों की चर्चा करते हुए बताते रहे कि संघ उनके ऐन विपरीत सोचता है और गोडसे ने गांधी की हत्या की थी, जो हिंदुत्ववादी विचारों से प्रभावित था। एक संघ भक्त ने उवाचा कि गोडसे एक 'स्ट्रे' व्यक्ति था, तो एक ने जवाब दिया कि सच यही है कि वह संघ के विचारों से प्रभावित था। गोडसे के भाई ने तो यहां तक बताया है कि वह संघ का सदस्य था है और रहेगा, लेकिन एक ने कहा कि संघ की सदस्यता का कोई रिकार्ड नहीं होता। यानी कि 'सदस्य' सदस्य हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता!

इस बार दशहरे के दिन रावण से अधिक लाइव कवरेज रफाल ने लिया। रफाल को देखते ही एंकरों की भुजाएं फड़कती दिखीं और देशप्रेम में पगे वे एक से एक वीर रस से युक्त काव्य पक्तियां गढ़ने लगते हैं, ताकि जनता भी इनको देख कर वीरासन में बैठ जाए, जैसे कि 'ये उड़ता है दुश्मन कांपते हैं', 'आया रफाल दुश्मनों का काल', 'हमें आंख दिखाओगे बहुत पछताओगे', 'जिसका नाम सुनते ही दुश्मन थर्राते हैं', 'गेम चेंजिंग ड्रीम मशीन, 'इमरान वाच आउट राफेल इज हियर', अंग्रेजी चैनल जब तब वीर रस में मदमाते रहे और मौका लगते ही हिंदी में वीर रस बरसाते रहे हैं!

एक दिन संघ प्रमुख मोहन भागवत ने 'लिंचिग' शब्द के 'भारतीय' न होने पर आपत्ति जता कर चैनलों में विवाद पैदा कर दिया। जवाब में एक ने कहा कि 'लिंचिंग' अंग्रेजी का हो या किसी का, 'हिंसा' तो 'हिंसा' है।

यानी 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति'!

नई दिल्ली